धूमिल

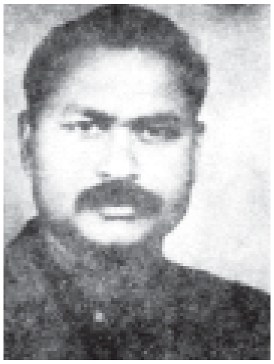

(सन् 1936-1975)

श्री सुदामा पांडेय 'धूमिल' का जन्म वाराणसी के पास खेवल नामक गाँव में हुआ। हाई स्कूल पास करके रोज़ी की फ़िक्र में पड़ गए। सन् 1958 में आई.टी.आई. वाराणसी से विद्यु डिप्लोमा किया और वहीं पर अनुदेशक के पद पर नियुक हो गए। असमय ही ब्रेन ट्यूमर से धूमिल की मृत्यु हो गइ

धूमिल की अनेक कविताएँ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं बिखरी पड़ी हैं, कुछ अभी तक अप्रकाशित भी हैं। ***संसद स सड़क तक, कल सुनना मुझे*** *और* ***सुदामा पांडेय का प्रजातं*** *उनके काव्य संग्रह हैं। धूमिल को मरणोपरांत 'साहित्य अकादम पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।*

धूमिल के काव्य-संस्कारों के भीतर एक खास प्रकार क गँवईपन है, एक भदेसपन, जो उनके व्यंग्य को धारदार औ कविता को असरदार बनाता है। उन्होंने अपनी कविता समकालीन राजनीतिक परिवेश में जी रहे जागरूक 'व्यक्ति' क तसवीर पेश की है और 1960 के बाद के मोहभंग क प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। संघर्षरत मनुष्यों के प्रति धूमिल के मन में अगाध करुणा है। उन्हें ऐसा लगता है कि समकालीन परिवेश इस करुणा का शत्रु है। इसीलिए उनकी कविता में यह करुणा कहीं आक्रोश का रूप धारण कर लेती है तो कहीं व्यंग्य और चुटकुलेबाज़ी का। साठोतरी कविता के इसी आक्रोश और ज़मीन से जुड़ी मुहावरेदार भाषा के कारण धूमिल की कविताएँ अलग से पहचानी जा सकती हैं।

धूमिल की काव्य भाषा और काव्यशिल्प में एक ज़बर्दस्त गर्माहट है – ऐसी गर्माहट जो बिजली के ताप से नहीं, जेठ की दुपहरी से आती है।

पाठ्यपुस्तक में उनकी कविता ***मोचीराम*** *दी गई है। कवि ने इस कविता के माध्यम से जीवन जीने के लिए सही तर्क*

की बात की है और हाशिये पर चले गए मनुष्य और समाज को उसकी पूरी सच्चाई के साथ उद्घाटित किया है। समाज की विषमता के कई कारण हैं जिनमें जातिवाद प्रमुख है, जिसने समाज की जड़ों को खोखला कर दिया है। धूमिल ने भाषा, जाति और पेशे के रिश्ते को प्रामाणिकता के साथ उकेरा है।

मोचीराम

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण-भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाये हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला-
बाबूजी! सच कहूँ-मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है

और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है

फिर भी मुझे खयाल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग 'नवैयत'
बतलाते हैं
सबकी अपनी-अपनी शक्ल है
अपनी-अपनी शैली है
मसलन एक जूता है :
जूता क्या है—चकतियों की थैली है
इसे एक चेहरा पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है
जैसे 'टेलीफ़ून' के खंभे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है
'बाबूजी! इस पर पैसा
क्यों फूँकते हो?'
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज़ लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ—भीतर से

एक आवाज़ आती है 'कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो।'
आप यकीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ

एक जूता और है जिससे पैर को
'नाँधकर' एक आदमी निकलता है
सैर को
न वह अक्लमंद है
न वक्त का पाबंद है
उसकी आँखों में लालच है
हाथों में घड़ी है
उसे कहीं जाना नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँद्धो, उशे का^ो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पी^ो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जुत्ते को ऐना बनाओ
ओफ़्फ़...! बड़ी गर्मी है' रूमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर 'आतियों-जातियों' को

बानर की तरह घूरता है
गरज़ यह कि घंटे-भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ़ 'नट' जाता है
'शरीफ़ों को लूटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक चिहुँककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है

चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं-न-कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अगुँली में गड़ती है

मगर इसका मतलब यह नहीं है
कि मुझे कोई गलतफ़हमी है
मुझे हर वक्त यह खयाल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

और बाबूजी! असल बात तो यह है कि ज़िंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोज़ी कमाने में
कोई फ़र्क नहीं है
और यही वह जगह है जहाँ हर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है
सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस बसंत को ही लो,
यह दिन को ताँत, की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हज़ारों सुखतल्ले
धूप में, सीझने के लिए
लटकाता है

सच कहता हूँ–उस समय
राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाये हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफ़त के पीछे

कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है
मगर जो ज़िंदगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमज़ात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफ़हमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है, सच्चाई
सबसे होकर गुज़रती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि 'इनकार से भरी हुई एक चीख'
और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है–
भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख'
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फ़र्ज अदा करते हैं।

प्रश्न-अभ्यास

1. इस कविता में निहित व्यंग्य स्पष्ट कीजिए।
2. पेशे पर चोट कब पड़ती है? और जब पड़ती है तो क्या होता है?
3. 'आँख कहीं जाती है, हाथ कहीं जाता है' – ऐसा किन स्थितियों में होता है?
4. ज़िंदा रहने के पीछे सही तर्क से कवि का क्या तात्पर्य है?
5. ज़िंदगी को किताब से नापनेवाले व्यक्ति के बारे में कवि के क्या विचार हैं?
6. कविता में चित्रित समाज और अपने आस-पास के समाज के बीच आप क्या संबंध पाते हैं? लिखिए।
7. इस कविता में आप भाषा और शिल्प संबंधी क्या नवीनताएँ पाते हैं?
8. आशय स्पष्ट कीजिए –

   (क) भविष्य गढ़ने में .... फ़र्ज़ अदा करते हैं।
   (ख) चोट जब पेशे .... दबी रह जाती है।
   (ग) मेरे लिए, हर .... मरम्मत के लिए खड़ा है।

योग्यता-विस्तार

1. बिंबात्मकता और नाटकीयता इस कविता की विशेषता है। इसे केंद्र में रखते हुए इसका मंचन कीजिए।
2. मोची की तरह नाई, दर्ज़ी, कुम्हार आदि का भी समाज के प्रति एक अलग दृष्टिकोण हो सकता है। उनसे बातचीत कर उनकी समस्याओं पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

राँपी - चमड़ा छिलने, तराशने का एक औज़ार
पतियाये हुए - विश्वास किए हुए
नवैयत - किस्म, तरह, प्रकार

चकतियों - छोटे-छोटे टुकड़ों को जोड़कर, पैच वर्क
नाँधकर - बाँधकर
नामा - रुपया-पैसा, रकम
बिसूरता है - दुखी होता है, सोच में पड़ जाता है
नट जाना - नकार जाना, मना करना
रामनामी - राम नाम लिखा हुआ ओढ़ने का वस्त्र
ताँत - पतला धागा, पतली रस्सी
मूठ - हत्था, बेंत
कमज़ात - ओछा, घटिया